:: परस्पर पूरकता से विकास परियोजना ::

:: बक्स्वाहा विकासखण्ड, जिला छतरपुर (म0प्र0) ::

(1) प्रयोजन (उद्देश्य)

(2) अवधारणा

(3) प्रारूप

(4) कार्य विधि

(5) संगठनात्मक ढांचा

(6) कार्य योजना :- वार्षिक, मासिक

(7) निरीक्षण/परीक्षण

(8) मूल्यांकन

(9) अभिलेखन

(1) प्रयोजन :

जलग्रहण क्षेत्र विकास परियोजना का मूल उद्देश्य मानव की मानव के साथ एवं मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ परस्पर पूरकता को समझते हुये तथा निर्वाह करते हुये प्रकृति समग्र की समृद्धि एवं विकास को प्राप्त करना, इस अर्थ में हम इसे "परस्पर पूरकता से विकास" परियोजना भी कह सकते हैं ।

(2) अवधारणा :

इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये प्रत्येक मनुष्य में इन तीन वस्तुओं का होना आवश्यक है:-

(1) समाधान (स्वयं में)

(2) सामाजिकता (मनुष्य की परस्पतरा मे,-परिवार एवं समाज में)

(3) स्वावलम्बन (मनुष्येत्तर प्रकृति की परस्पर पूरकता में)

2.1 **समाधान :**

समाधान अर्थात समझदारी का तात्पर्य है कि स्वयं से लेकर परिवार, समाज प्रकृति एवं अस्तित्व समग्र की व्यवस्था को समझना, ऐसी व्यवस्था जो प्रकृति सहज है और मान सहज है । प्रकृति सहज का अर्थ इस व्यवस्था के होने के लिये जो कुछ भी चाहिए यह प्रकृति में सहज रूप से उपलब्ध है । तथा मानव सहज का अर्थ यह व्यवस्था मानव को सहज स्वीकार है ।

समग्र व्यवस्था को समझने पर मनुष्य की मनुष्य के साथ परस्परता, सामाजिकता तथा मनुष्य की मनुष्येत्तर प्रकृति की साथ परस्परता (स्वावलंबन) समझ में आता है ।

2.2 **सामाजिकता :**

मानव की मानव के सांथ परस्परता एवं पूरकता को समझना एवं उसका निर्वाह करना सामाजिकता है ।

www.madhyasth-darshan.info - Information Portal

मानवीय संबंधों में निहीत अपेक्षाओं, मूल्यों को महचानना (मूल्यों से अर्थ सहज स्वीकार भाव स्वभाव से है) एवं उसका निर्वाह करना सामाजिकता है । इस निर्वाह से उभय तृप्ति (हर एक को सुख की प्राप्ति) होती है, यही न्याय है । इस सामाजिकता के आधार पर परिवार एवं समाज में व्यवस्था सुनिश्चित होती है । परस्पर विश्वास एवं अभय का वातावरण बना रहता है । निरंतर सुख से जीने की संभावना सुनिश्चित होती है ।

2.3 **स्वावलंबन :**

मनुष्य की मनुष्येत्तर प्रकृति (पदार्थवस्था – मिट्टी, हवा, पानी, प्राणावस्था:–पेड़ पौधे एवं जीवास्था :–पशु, पक्षी) के साथ परस्परता एवं पूरकता को समझना और उसका निर्वाह करना स्वावलंबन है।

मानव को शरीर की आवश्यकता को पूरा करने के लिये आहार, आवास, अलंकार की जरूरत होती है । ये जरूरतें भौतिक, रासायनिक वस्तुओं (जिन्हें हम सुविधा कहते हैं) से पूरी होती है । ये सुविधा प्रकृति में उपलब्ध बस्तुओं पर मनुष्य के श्रम द्वारा उत्पादित की जाती हैं । इस प्रकार प्रकृति से मनुष्य को आवश्यक सुविधा उपलब्ध होती है और प्रकृति मनुष्य के लिये पूरक सिद्ध होती है । उत्पादन की प्रक्रिया आवर्तन शील होनी चाहिए । आर्वतन शील का अर्थ ऐसी प्रक्रिया जो चक्रिय हो और जिसमें भाग लेने वाली सभी इकाईयां सम्बद्ध हो ऐसी उत्पादन प्रक्रिया अपनाने पर प्रकृति की हर इकाई का संरक्षण एवं संर्वधन सुनिश्चित होता है । मनुष्य प्रकृति के लिये पूरक सिद्ध होता है ।

प्रकृति से मनुष्य सुविधा प्राप्त कर प्रकृति का सदुपयोग करता है । इस अर्थ में प्रकृति की पूरकता सुनिश्चित होती है । और मनुष्य प्रकृति का संरक्षण एवं संर्वधन करता है । इस अर्थ में मनुष्य की पूरकता निश्चित होती है अतः प्रकृति के सहजउपयोग में संरक्षण, संर्वधन से मानव एवं मनुष्येत्तर प्रकृति के बीच परस्पर पूरकता सुनिश्चित होती है ।

आर्वतनशील पद्धति द्वारा प्रकृति ऐश्वर्य पर श्रम–नियोजन पूर्वक आवश्यकता से अधिक उत्पादन स्वावलंबन और इससे हर परिवार में समृद्धि का अभाव सुनिश्चित होता है । साथ–साथ मनुष्येत्तर प्रकृति भी समृद्ध होती है । और उसके साथ सह–अस्तित्व प्रमाणित होता है ।

समाधान सामाजिकता और स्वालंबन के आधार पर हर शक्ति में समाधान, हर परिवार में समृद्धि समाज में अभय और प्रकृति में सह–अस्तित्व की परस्परता स्थापित होती है । समाधान, समृद्धि अभय, सह–अस्तित्व के हर समाज में लिये वांछित है । इसमें कम या ज्यादा की आवश्यकता नहीं है । यही सर्वसुख है अतः इस परियोजना कां उद्देश्य समाधान, सामाजिकता एवं स्वालंबन के माध्यम से सर्व सुख समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व की प्राप्ति है ।

www.madhyasth-darshan.info - Information Portal

3. **प्रारूप :**

समाधान, सामाजिकता एवं स्वावलंबन सुनिश्चित करने के लिये :-

1- हर व्यक्ति को समाधानित करना, जिम्मेदार करना ।

2- समाज के स्तर पर सामाजिकता, सहभागिता, परस्पर विश्वास विकसित करना ।

3- प्रकृति के स्तर पर सदुपयोग, संरक्षण एवं संवर्धन सुनिश्चित करना ।

आवश्यकता है:-

इन तीनों को कार्यरूप देने के लिये समाज की व्यवस्था के निम्नलिखित पाचं आयाम :-

1- शिक्षा संस्कार

2- न्याय - सुरक्षा

3- उत्पादन कार्य

4- विनिमय कोष

5- स्वास्थ्य संयम

3.1 **शिक्षा संस्कार :**

शिक्षा का अर्थ स्वयं से लेकर परिवार, समाज, प्रकृति एवं अस्तित्व समग्र की सहज स्वीकार व्यवस्था को समझना एवं संस्कार का अर्थ इस सहज व्यवस्था में जीने के लिये आवश्यक तैयारी कर लेना है । इस प्रकार शिक्षा संस्कार के माध्यम से हर व्यक्ति सही को समझकर सही करने में सक्षम हो जाता है । स्पष्ट है कि प्रचलित शिक्षा पद्धति इस दृष्टि से पूरी तरह असफल रही है ।

3.2 **न्याय - सुरक्षा :**

मानव का मानव के साथ जो संबंध है उसको पहचानना, उसका निर्वाह करन उभय तृप्ति पाना न्याय है ।

मनुष्य का मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ संबंध को पहचानना और निर्वा कर उभय तृप्ति को प्राप्त करना सुरक्षा है । इस दृष्टि से सुरक्षा में प्राकृतिक ऐश्वर्य (पदार्थवस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था) का सदुपयोग संरक्षण एवं संर्वधन सम्मिलित है ।

यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि पदार्थावस्था (मिट्टी, हवा, पानी) प्राणावस्था (पेड, पौधे) एवं जीवावस्था (पशु, पक्षी) एक दूसरे के साथ परस्परता का निर्वाह करते हुये समृद्धि करते हैं । यह मनुष्य (जो ज्ञानावस्था की इकाई है) इन तीनों के साथ अपनी परस्पर पूरकता को समझ पाने के कारण प्रकृति का शोषण व प्रकृति पर अधिकार जमाने का प्रयास करता है । फलस्वरूप इन तीनों के विकास को वांछित करते हुये स्वयं भी उस समृद्धि व अनिश्चितता को प्राप्त होता है । समझदारी के आधार पर मनुष्य भी चारों अवस्थाओं के बीच परस्पर पूरकता को सुनिश्चित कर समृद्धि को प्राप्त करता है ।

3.3 **उत्पादन कार्य :**

मनुष्येत्तर प्रकृति पर मनुष्य द्वारा किया गया श्रम कार्य है, और उससे प्राप्त वस्तु उत्पादन मनुष्य अपने शरीर की आवश्यकता की पूर्ति के लिए इन वस्तुओं का उत्पादन करता है । उत्पादन की यह प्रक्रिया आर्वतनशील हो तो उन तीनों अवस्थाओं के साथ मनुष्य की परस्पर पूरकता का निर्वाह होता है । आर्वतन शील का तात्पर्य ऐसी उत्पादन प्रक्रिया से है जो :-

(1) चक्रिय क्रम में हो और,

(2) इसमें भाग लेने वाले हर इकाई सम्बद्ध होती है ।

प्रकृति में प्राप्त ऐश्वर्य पर आवर्तनशील विधि से मनुष्य अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन करन सकता है और समृद्ध हो सकता है । इस प्रकार आर्वतन शील उत्पादन कार्य के माध्यम से मनुष्य स्वयं भी समृद्ध हो सकता है और प्रकृति की अन्य तीनों अवस्थाओं को भी समृद्ध कर सकता है साधारणत: सुविधा को आवश्यकता परिवार के स्तर पर परिभाषित हो पाती है । और उत्पादन कार्य भी परिवार के स्तर पर भी परिभाषित होता है । परिवार एक इकाई के रूप में उत्पादन कार्य में भाग लेता है और अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर पाता है ।

3.4 **विनिमय कोष :**

परिवार में उत्पादित वस्तुओं का परस्पर पूरकता के अर्थ में आदान-प्रदान करना विनिमय है। और आवश्यकता की पूर्ति के बाद शेष उत्पादन का आवश्यकतानुसार प्रयोग करने के लिये संचय करना कोष है । इन दोनों का आधार समाज में परस्पर पूरकता है । जैसा उन्माद आज देखने को मिलता है । सही अर्थ में किये गये कार्य विनिमय कोष से मनुष्यों के बीच परस्पर पूरकता सुनिश्चित होती है और विश्वास एवं अभय का वातावरण रहता है ।

3.5 **स्वास्थ्य संयम :**

मनुष्य मन (जीवन) और शरीर का संयुक्त रूप है जीवन (मन) को निरंतर सुख चाहिए और शरीर को स्वस्थ्य । जीवन शरीर को साधन की तरह प्रयोग करता है और इसलिये उसके पोषण संरक्षण एवं सदुपयोग की जिम्मेदारी को स्वीकारता है । जीवन में स्वीकृति का यह भाव ही संयम है । शरीर की ऐसी स्थिति जिसमें वह जीवन के अनुसार कार्य कर पता है स्वास्थ्य है ।

हर मनुष्य जीवन में संयम और शरीर में स्वास्थ्य की सुनिश्चितता करना आवश्यक है । समझदारी होने पर जीवन संयम पूर्वक अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह करने के लिये शरीर का पोषण एवं संरक्षण की दृष्टि से समुचित आहार एवं बिहार शरीर को उपलब्ध कराता है । शरीर की व्यवस्था में व्यतिरेक होने पर प्रकृति में उपलब्ध औषधियों एवं चिकित्सा के प्रयोग से उसे व्यवस्थित करना भी आवश्यक है ।

www.madhyasth-darshan.info - Information Portal

इन पांचों आयामों के आधार पर हर व्यक्ति में उपलब्ध समाधान (समझदारी) सामाजिकता एवं स्वावलंबन उपलब्ध होता है साथ-साथ समाज के स्तर पर शिक्षा संस्कार से हर व्यक्ति में समाधान उत्पादन कार्य से हर परिवार में समृद्धि न्याय एवं विनिमय कोष से परस्पर विश्वास एवं अभय तथा सुरक्षा एवं आवर्तन शील उत्पादन कार्य से प्रकृति में सह अस्तित्व सुनिश्चित होता है ।

इस जल ग्रहण परियोजना जिसे हम परस्पर पूरकता से विकास परियोजना के नाम से इंगित कर रहे हैं । के तहत् प्रमुख रूप से न्याय सुरक्षा व्यवस्था के आयाम को लिया जायेगा अर्थात् मनुष्य की मनुष्य के साथ परस्पर पूरकता तथा मनुष्य की मनुष्येत्तर प्रकृति के बीच परस्पर पूरकता को कार्य रूप दिया जायेगा । इस परस्पर पूरकता को सुनिश्चित करने का आधार मनुष्य की समझदारी होगी । इसलिये मनुष्य को समझदार बनाने के लिये आवश्यक शिक्षा संस्कार को भी इस परियोजना में शामिल किया जायेगा । यह भी सुनिश्चित किया जायेगा कि संदर्भित समाज में प्रचलित उत्पादन कार्य व्यवस्था एवं विनिमय कोष व्यवस्था भी न्याय सुरक्षा को सुदृढ़ करने के अर्थ में हो ।

(4.0) कार्य विधि :

(4.1) जन-जागृति :

परस्पर पूरकता के निर्वाह आधार समझदारी है । अतः सर्वप्रथम संदर्भित ग्रामीणों को समझदार बनाने का कार्यक्रम पूरा किया जायेगा ।

इसके लिए हर गांव में जन जागृति (जीवन विधा) शिविर का आयोजन किया जायेगा । और सभी व्यस्कों को समझदारी सम्पन्न बनाया जायेगा ।

4.2 सामाजिक न्याय :

समझदारी के आधार पर गांव के लोगों के द्वारा परस्पर न्याय पूर्ण व्यवहार कर उभय तृप्ति पाने और मिल जुलकर सर्वशुभ के अर्थ में सामूहिक निर्णय लेने की प्रक्रिया एवं परम्परा सुनिश्चित की जायेगी ।

4.3 प्रकृति की सुरक्षा :

समझदारी के आधार पर हर व्यक्ति में स्वयं में और पूरा समाज सामूहिक रूप में मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ अपनी पूरकता का निर्वाह कर स्वयं में सम्बद्ध होने और प्रकृति को समृद्ध करने की प्रक्रिया सुनिश्चित की जायेगी ।

इस परस्पर पूरकता के निर्वाह के संदर्भ में निम्न तीन बातें महत्वपूर्ण हैं :-

4.3.1 संरक्षण :

अस्तित्व सहज ढंग से प्रकृति की तीनों अवस्थाओं (पदार्थ, प्राण, जीवावस्था) में विकसित विभिन्न प्रजातियों को प्रकृति के विकास क्रम (संपूर्णता) को सुनिश्चितता के अर्थ में बनाये रखना संरक्षण है इस संरक्षण को सुनिश्चित किया जायेगा । विशेषकर भूमि, जल और पेड़ पौधों के संरक्षण पर बल दिया जायेगा ।

4.3.2 **संर्वधन :**

प्रकृति निरंतर विकास क्रम में है । इस विकास क्रम में हर इकाई निरंतर समृद्ध होती रहती है । यह संर्वधन है, इस दृष्टि से इकाईयों का मात्र संरक्षण पर्याप्त नहीं है उनका निरंतर संवर्धन होना आवश्यक है । अतः इन विभिन्न प्रजातियों के संर्वधन की प्रक्रियाओं को सुनिश्चित किया जायेगा । हमारी उत्पादन प्रक्रिया आर्वतनशील होगी जिसके आधार पर प्रकृति की इन अवस्थाओं का संरक्षण और संर्वधन दोनो ही सज होगा ।

4.3.3 **सदुपयोग :**

अस्तित्व सहज व्यवस्था में जो वस्तु जिस अर्थ में है उस अर्थ में इसका प्रयोग करना, सदुपयोग है । प्रकृति ने भौतिक, रासायनिक संसाधनों का सदुपयोग शरीर के पोषण, संरक्षण एवं साधन के रूप में है । समझदारी से यह स्पष्ट होता है कि इस अर्थ में मनुष्य के शरीर के लिए सुविधा की आवश्यकता सीमित है । प्रकृति में आवश्यकता से अधिक संसाधन उपलब्ध हैं एवं मनुष्य श्रम पूर्वक उसे सहजता से प्राप्त कर सकता है और समृद्ध हो सकता है ।

शरीर की सुविधा की आवश्यकता के अर्थ में देखने पर ही यह स्पष्ट हो पाता है कि जितने प्राकृतिक संसाधनों की आवश्यकता है वह प्रकृति में सहज व्यवस्था के तहत् आर्वतनशील प्रक्रिया के द्वारा सहजता से प्राप्त की जा सकती है । इस स्पष्टता के आधार पर भी प्राकृतिक संसाधनों का सही अर्थ में संरक्षण एवं संर्वधन हो पाता है । अतः सदुपयोग से ही संरक्षण एवं संवर्धन की निश्चितता है ।

5.0 **कार्य योजना :**

उपरोक्त कार्यो को मूर्त रूप देने का क्रम निम्न प्रकार होगा ।

5.1 **जन जागृति एवं सामाजिक न्याय :**

प्रथम वर्ष में जन–जागृति (जीवन विद्या) शिविर के माध्यम से हर व्यस्क ग्रामीण में समझदारी विकसित करने का कार्य पूरा किया जायेगा ।

समझदार व्यक्तियों की सामूहिक राय से समाज में न्यायपूर्ण व्यवहार एवं सर्वशुभ के कार्यो को परंपरा के रूप में स्थापित किया जायेगा ।

5.2 **प्रकृति की सुरक्षा :**

समझदारी संपन्न ग्रामीणों के लिए प्रकृति के साथ परस्पर पूरकता को पहचानना सहज होगा। इस पहचान के आधार पर वे निम्नलिखित को प्राप्त कर पायेंगे :–

5.2.1 **सदुपयोग :**

हर व्यक्ति के शरीर के पोषण, संरक्षक एवं साधन के रूप में आवश्यक सुविधाओं प्राकृतिक संसाधनों से पूरा किया जायेगा । प्राकृतिक संसाधनों का दुरूपयोग को समझदारी एवं सामूहिक सहमति के आधार पर सहजता से रोका जा सकेगा ।

www.madhyasth-darshan.info - Information Portal

5.2.2 **संरक्षण :**

परस्पर पूरकता के पहचान के बाद प्रकृति को पहुंचाई जा रही क्षति रूकेगी, अनावश्यक दुरूपयोग समाप्त होने पर आर्वतनशील तरीके से प्राप्त उत्पान से प्राकृतिक संसाधन मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने में पर्याप्त होगें, और इस दृष्टि से संसाधनों का संरक्षण सुनिश्चित होगा ।

जिन संसाधनों को मनुष्य द्वारा इस हद तक क्षति पहुंचाई गई कि उनसे जुड़ी प्रकृति सहज आर्वतनशील प्रक्रिया भी बाधित हो गई है । उनके लिये इन आर्वतनशील प्रक्रियाओं को पुर्नस्थापित करने की दृष्टि से क्षति पूर्ति करने की आवश्यकता होगी । यह विशेषकर जल भूमि एवं वन संरक्षण के क्षेत्र में ज्यादा आवश्यक होगी । इस दृष्टि से जल संग्रहण, भूमि संरक्षण को रोकने एवं वन क्षति को रोकने का काम प्राथमिकता से लिया जायेगा ।

5.2.3 **संर्वधन :**

प्रकृति सहज विकास को स्थापित करने की दृष्टि से संरक्षण के साथ–साथ संर्वधन को भी सुनिश्चित किया जायेगा । इसके तहत् वनीकरण, विभिन्न प्रजातियों के पौधों को लगाया जायेगा । इससे भूमि की गुणवत्ता का विकास हो, औषधियों एवं फलदार वृक्षों का लगाया जाना, ढ़लान व समतल भूमि की खेतों की मेढ़ बंदी करना आदि प्रमुख हैं । इस प्रकार प्राकृतिक संसाधनों के सदुपयोग, संरक्षण एवं संर्वधन से मनुष्येत्तर प्रकृति की सुरक्षा सुनिश्चित की जायेगी । मनुष्येत्तर प्रकृति की तीन अवस्थाओं पदार्थ अवस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था के साथ मानव की परस्पर पूरकता सिद्ध होगी । ग्रामवासी स्वयं ही समृद्ध होंगे और उनकी प्रकृति भी समृद्ध होगी ।

इन कार्यों को पूरा करने के लिये निर्धारित कार्य सारणी संलग्नक "ए" व "बी" में दी गयी है ।